बारह-भावना

(बाबू जुगलकिशोर जैन 'युगलजी', कृत
श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन की जयमाला)

(पद्धरि)

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥

(अनित्यभावना)

झूँठे जग के सपने सारे, झूठी मन की सब आशाएँ।
तन-जीवन यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुराझायें॥

(अशरणभावना)

सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥

(संसारभावना)

संसार महा दुःखसागर के, प्रभु दुःखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षणभर भी, कंचन[1]-कामिनी[2] प्रासादों[3] में॥

(एकत्वभावना)

मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥

(अन्यत्वभावना)

मेरे न हुए ये, मैं इन से, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम-रस पीने वाला हूँ॥

---

१. स्वर्ण; २. स्त्री; ३. महल

(अशुचिभावना)

जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता॥

(आस्रवभावना)

दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता॥

(संवरभावना)

शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥

(निर्जराभावना)

फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्मप्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥

(लोकभावना)

हम छोड़ चले यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निजलोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या॥

(बोधिदुर्लभभावना)

जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥

(धर्मभावना)

चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी॥